

## पिंगलागीता

[ पिंगलागीता महाभारतके शान्तिपर्वके अन्तर्गत पितामह भीष्म एवं धर्मराज युधिष्ठिरके संवादरूपमें प्राप्त होती है। उसमें धन-सम्पत्तिके नष्ट होने अथवा किसी प्रियजनकी मृत्यु होनेपर उत्पन्न शोकके निवारणका उपाय एक प्राचीन आख्यानके माध्यमसे बताया गया है। आख्यानमें शोकाकुल राजा सेनजित्को एक हितैषी ब्राह्मणने युक्तियोंके माध्यमसे बहुत मार्मिक तथा प्रभावी उपदेश दिये हैं। इसी क्रममें पिंगला नामक एक गणिकाका भी वर्णन आया है, जो निराशाके कारण विरक्त होकर परमसुखको प्राप्त हो गयी थी। इसी प्रसंगके कारण इसे 'पिंगलागीता' कहा जाता है। यह गीता यहाँ सानुवाद प्रस्तुत की जा रही है— ]

युधिष्ठिर उवाच

धर्माः पितामहेनोक्ता राजधर्माश्रिताः शुभाः ।  
धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हसि पार्थिव ॥ १ ॥

राजा युधिष्ठिरने कहा—[ हे पितामह ! ] आपने राजधर्मसम्बन्धी श्रेष्ठ धर्मोंका उपदेश दिया। हे पृथ्वीनाथ ! अब आप आश्रमियोंके उत्तम धर्मका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलं तपः ।  
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया ॥ २ ॥

भीष्मजी बोले—[ युधिष्ठिर ! ] वेदोंमें सर्वत्र सभी आश्रमोंके लिये स्वर्गसाधक यथार्थ फलकी प्राप्ति करानेवाली तपस्याका उल्लेख है। धर्मके बहुत-से द्वार हैं। संसारमें कोई ऐसी क्रिया नहीं है, जिसका कोई फल न हो ॥ २ ॥

यस्मिन् यस्मिंस्तु विषये यो यो याति विनिश्चयम् ।  
स तमेवाभिजानाति नान्यं भरतसत्तम ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो-जो पुरुष जिस-जिस विषयोंमें पूर्ण निश्चयको

पहुँच जाता है (जिसके द्वारा उसे अभीष्ट सिद्धिका विश्वास हो जाता है), उसीको वह कर्तव्य समझता है। दूसरे विषयको नहीं ॥ ३ ॥

यथा यथा च पर्येति लोकतन्त्रमसारवत्।

तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः ॥ ४ ॥

मनुष्य जैसे-जैसे संसारके पदार्थोंको सारहीन समझता है, वैसे-ही-वैसे इनमें उसका वैराग्य होता जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥

एवं व्यवसिते लोके बहुदोषे युधिष्ठिर।

आत्ममोक्षनिमित्तं वै यतेत मतिमान् नरः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर! इस प्रकार यह जगत् अनेक दोषोंसे परिपूर्ण है, ऐसा निश्चय करके बुद्धिमान् पुरुष अपने मोक्षके लिये प्रयत्न करे ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते।

यया बुद्ध्या नुदेच्छोकं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! धनके नष्ट हो जानेपर अथवा स्त्री, पुत्र या पिताके मर जानेपर किस बुद्धिसे मनुष्य अपने शोकका निवारण करे? यह मुझे बताइये ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते।

अहो दुःखमिति ध्यायञ्शोकस्यापचितिं चरेत् ॥ ७ ॥

भीष्मजीने कहा—[वत्स!] जब धन नष्ट हो जाय अथवा स्त्री, पुत्र या पिताकी मृत्यु हो जाय, तब 'ओह! संसार कैसा दुःखमय है' यह सोचकर मनुष्य शोकको दूर करनेवाले शम-दम आदि साधनोंका अनुष्ठान करे ॥ ७ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं

पुरातनम्।

यथा सेनजितं विप्रः कश्चिदेत्याब्रवीत् सुहृत् ॥ ८ ॥

इस विषयमें किसी हितैषी ब्राह्मणने राजा सेनजित्के पास आकर

उन्हें जैसा उपदेश दिया था, उसी प्राचीन इतिहासको विज्ञ पुरुष दृष्टान्तके रूपमें प्रस्तुत किया करते हैं ॥ ८ ॥

**पुत्रशोकाभिसन्तप्तं राजानं शोकविह्वलम्।  
विषण्णमनसं दृष्ट्वा विप्रो वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥**

राजा सेनजित्के पुत्रकी मृत्यु हो गयी थी। वे उसीके शोककी आगसे जल रहे थे। उनका मन विषादमें डूबा हुआ था। उन शोकविह्वल नरेशको देखकर ब्राह्मणने इस प्रकार कहा— ॥ ९ ॥

**किं नु मुह्यसि मूढस्त्वं शोच्यः किमनुशोचसि।  
यदा त्वामपि शोचन्तः शोच्या यास्यन्ति तां गतिम् ॥ १० ॥**

[राजन्!] तुम मूढ़ मनुष्यकी भाँति क्यों मोहित हो रहे हो? शोकके योग्य तो तुम स्वयं ही हो, फिर दूसरोंके लिये क्यों शोक करते हो? अजी! एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि दूसरे शोचनीय मनुष्य तुम्हारे लिये भी शोक करते हुए उसी गतिको प्राप्त होंगे ॥ १० ॥

**त्वं चैवाहं च ये चान्ये त्वामुपासन्ति पार्थिव।  
सर्वे तत्र गमिष्यामो यत एवागता वयम् ॥ ११ ॥**

‘पृथ्वीनाथ! तुम, मैं और ये दूसरे लोग जो इस समय तुम्हारे पास बैठे हैं, सब वहीं जायँगे, जहाँसे हम आये हैं’ ॥ ११ ॥

*सेनजिदुवाच*

**का बुद्धिः किं तपो विप्र कः समाधिस्तपोधन।  
किं ज्ञानं किं श्रुतं चैव यत् प्राप्य न विषीदसि ॥ १२ ॥**

सेनजित्ने पूछा—तपस्याके धनी ब्राह्मणदेव! आपके पास ऐसी कौन-सी बुद्धि, कौन-सा तप, कौन-सी समाधि, कैसा ज्ञान और कौन-सा शास्त्र है, जिसे पाकर आपको किसी प्रकारका विषाद नहीं है ॥ १२ ॥

**( हृष्यन्तमवसीदन्तं सुखदुःखविपर्यये।  
आत्मानमनुशोचामि ममैष हृदि संस्थितः ॥ )**

सुख और दुःखका चक्र घूमता रहता है। मैं सुखमें हर्षसे फूल

उठता हूँ और दुःखमें खिन्न हो जाता हूँ। ऐसी अवस्थामें पड़े हुए अपने आपके लिये मुझे निरन्तर शोक होता है। यह शोक मेरे हृदयमें डेरा डाले बैठा है।

ब्राह्मण उवाच

पश्य भूतानि दुःखेन व्यतिषिक्तानि सर्वशः ।  
उत्तमाधममध्यानि तेषु तेष्विह कर्मसु ॥ १३ ॥

ब्राह्मणने कहा—[राजन्!] देखो, इस संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्राणी भिन्न-भिन्न कर्मोंमें आसक्त हो दुःखसे ग्रस्त हो रहे हैं ॥ १३ ॥

(अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् ।  
न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम ॥)

मैं तो अकेला हूँ। न तो दूसरा कोई मेरा है और न मैं किसी दूसरेका हूँ। मैं उस पुरुषको नहीं देखता, जिसका मैं होऊँ तथा उसको भी नहीं देखता, जो मेरा हो (न मुझपर किसीकी ममता है, न मेरा ही किसीपर ममत्व है)।

आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम ।  
यथा मम तथान्येषामिति चिन्त्य न मे व्यथा ।  
एतां बुद्धिमहं प्राप्य न प्रहृष्ये न च व्यथे ॥ १४ ॥

यह शरीर भी मेरा नहीं अथवा सारी पृथ्वी भी मेरी नहीं है। ये सब वस्तुएँ जैसे मेरी हैं, वैसे ही दूसरोंकी भी हैं। ऐसा सोचकर इनके लिये मेरे मनमें कोई व्यथा नहीं होती। इस बुद्धिको पाकर न मुझे हर्ष होता है, न शोक ॥ १४ ॥

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।  
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ १५ ॥

जिस प्रकार समुद्रमें बहते हुए दो काष्ठ कभी-कभी एक-दूसरेसे

मिल जाते हैं और मिलकर फिर अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार इस लोकमें प्राणियोंका समागम होता है ॥ १५ ॥

एवं पुत्राश्च पौत्राश्च ज्ञातयो बान्धवास्तथा।  
तेषां स्नेहो न कर्तव्यो विप्रयोगो ध्रुवो हि तैः ॥ १६ ॥

इसी तरह पुत्र, पौत्र, जाति-बान्धव और सम्बन्धी भी मिल जाते हैं। उनके प्रति कभी आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये; क्योंकि एक दिन उनसे बिछोह होना निश्चित है ॥ १६ ॥

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः।  
न त्वासौ वेद न त्वं तं कः सन् किमनुशोचसि ॥ १७ ॥

तुम्हारा पुत्र किसी अज्ञात स्थितिसे आया था और अब अज्ञात स्थितिमें ही चला गया है। न तो वह तुम्हें जानता था और न तुम उसे जानते थे; फिर तुम उसके कौन होकर किसलिये शोक करते हो ? ॥ १७ ॥

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम्।  
सुखात् सञ्जायते दुःखं दुःखमेवं पुनः पुनः ॥ १८ ॥

संसारमें विषयोंकी तृष्णासे जो व्याकुलता होती है, उसीका नाम दुःख है और उस दुःखका विनाश ही सुख है। उस सुखके बाद (पुनः कामनाजनित) दुःख होता है। इस प्रकार बारम्बार दुःख ही होता रहता है ॥ १८ ॥

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।  
सुखदुःखे मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्ततः ॥ १९ ॥

सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आता है। मनुष्योंके सुख और दुःख चक्रकी भाँति घूमते रहते हैं ॥ १९ ॥

सुखात् त्वं दुःखमापन्नः पुनरापत्स्यसे सुखम्।  
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम् ॥ २० ॥

इस समय तुम सुखसे दुःखमें आ पड़े हो। अब फिर तुम्हें सुखकी

प्राप्ति होगी। यहाँ किसी भी प्राणीको न तो सदा सुख ही प्राप्त होता है और न सदा दुःख ही ॥ २० ॥

**शरीरमेवायतनं**

**सुखस्य**

**दुःखस्य**

**चाप्यायतनं**

**शरीरम्।**

**यद्यच्छरीरेण**

**करोति**

**कर्म**

**तेनैव**

**देही**

**समुपाश्नुते**

**तत् ॥ २१ ॥**

यह शरीर ही सुखका आधार है और यही दुःखका भी आधार है। देहाभिमानी पुरुष शरीरसे जो-जो कर्म करता है, उसीके अनुसार वह सुख एवं दुःखरूप फल भोगता है ॥ २१ ॥

**जीवितं च शरीरेण जात्यैव सह जायते।**

**उभे सह विवर्तेते उभे सह विनश्यतः ॥ २२ ॥**

यह जीवन स्वभावतः शरीरके साथ ही उत्पन्न होता है। दोनों साथ-साथ विविध रूपोंमें रहते हैं और साथ-ही-साथ नष्ट हो जाते हैं ॥ २२ ॥

**स्नेहपाशैर्बहुविधैराविष्टविषया**

**जनाः।**

**अकृतार्थाश्च**

**सीदन्ते**

**जलैः**

**सैकतसेतवः ॥ २३ ॥**

मनुष्य नाना प्रकारके स्नेह-बन्धनोंमें बँधे हुए हैं, अतः वे सदा विषयोंकी आसक्तिसे घिरे रहते हैं; इसीलिये जैसे बालूद्वारा बनाये हुए पुल जलके वेगसे बह जाते हैं, उसी प्रकार उन मनुष्योंकी विषयकामना सफल नहीं होती; जिससे वे दुःख पाते रहते हैं ॥ २३ ॥

**स्नेहेन तिलवत् सर्वं सर्गचक्रे निपीड्यते।**

**तिलपीडैरिवाक्रम्य**

**क्लेशैरज्ञानसम्भवैः ॥ २४ ॥**

तेलीलोग तेलके लिये जैसे तिलोंको कोल्हूमें पेरते हैं, उसी प्रकार स्नेहके कारण सब लोग अज्ञानजनित क्लेशोंद्वारा सृष्टिचक्रमें पिस रहे हैं ॥ २४ ॥

सञ्चिनोत्पशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः ।

एकः क्लेशानवाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥ २५ ॥

मनुष्य स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बके लिये चोरी आदि पापकर्मोंका संग्रह करता है; किंतु इस लोक और परलोकमें उसे अकेले ही उन समस्त कर्मोंका क्लेशमय फल भोगना पड़ता है ॥ २५ ॥

पुत्रदारकुटुम्बेषु प्रसक्ताः सर्वमानवाः ।

शोकपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ २६ ॥

स्त्री, पुत्र और कुटुम्बमें आसक्त हुए सभी मनुष्य उसी प्रकार शोकके समुद्रमें डूब जाते हैं, जैसे बूढ़े जंगली हाथी दलदलमें फँसकर नष्ट हो जाते हैं ॥ २६ ॥

पुत्रनाशे वित्तनाशे ज्ञातिसम्बन्धिनामपि ।

प्राप्यते सुमहद् दुःखं दावाग्निप्रतिमं विभो ।

दैवायत्तमिदं सर्वं सुखदुःखे भवाभवौ ॥ २७ ॥

प्रभो! यहाँ सब लोगोंको पुत्र, धन, कुटुम्बी तथा सम्बन्धियोंका नाश होनेपर दावानलके समान दाह उत्पन्न करनेवाला महान् दुःख प्राप्त होता है; परंतु सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु आदि यह सब कुछ प्रारब्धके ही अधीन है ॥ २७ ॥

असुहृत् ससुहृच्चापि सशत्रुर्मित्रवानपि ।

सप्रज्ञः प्रज्ञया हीनो दैवेन लभते सुखम् ॥ २८ ॥

मनुष्य हितैषी सुहृदोंसे युक्त हो या न हो, वह शत्रुके साथ हो या मित्रके, बुद्धिमान् हो या बुद्धिहीन, दैवकी अनुकूलता होनेपर ही सुख पाता है ॥ २८ ॥

नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः ।

न च प्रज्ञालमर्थानां न सुखानामलं धनम् ॥ २९ ॥

अन्यथा न तो सुहृद् सुख देनेमें समर्थ हैं, न शत्रु दुःख देनेमें समर्थ हैं, न तो बुद्धि धन देनेकी शक्ति रखती है और न धन ही

सुख देनेमें समर्थ होता है ॥ २९ ॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।  
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३० ॥

न तो बुद्धि धनकी प्राप्तिमें कारण है, न मूर्खता निर्धनतामें, वास्तवमें संसारचक्रकी गतिका वृत्तान्त कोई ज्ञानी पुरुष ही जान पाता है, दूसरा नहीं ॥ ३० ॥

बुद्धिमन्तं च शूरं च मूढं भीरुं जडं कविम् ।  
दुर्बलं बलवन्तं च भागिनं भजते सुखम् ॥ ३१ ॥

बुद्धिमान्, शूरवीर, मूढ़, डरपोक, गूँगा, विद्वान्, दुर्बल और बलवान् जो भी भाग्यवान् होगा—दैव जिसके अनुकूल होगा, उसे बिना यत्नके ही सुख प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥

धेनुर्वत्सस्य गोपस्य स्वामिनस्तस्करस्य च ।  
पयः पिबति यस्तस्या धेनुस्तस्येति निश्चयः ॥ ३२ ॥

दूध देनेवाली गौ बछड़ेकी है या उसे दुहने अथवा चरानेवाले ग्वालेकी है या रखनेवाले मालिककी है अथवा उसे चुराकर ले जानेवाले चोरकी है? वास्तवमें जो उसका दूध पीता है, उसीकी वह गाय है; ऐसा विद्वानोंका निश्चय है ॥ ३२ ॥

ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः ।  
ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ ३३ ॥

इस संसारमें जो अत्यन्त मूढ़ हैं और जो बुद्धिसे परे पहुँच गये हैं, वे ही मनुष्य सुखी हैं। बीचके सभी लोग कष्ट भोगते हैं ॥ ३३ ॥

अन्त्येषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।  
अन्त्यप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमन्त्ययोः ॥ ३४ ॥

ज्ञानी पुरुष अन्तिम स्थितियोंमें रमण करते हैं, मध्यवर्ती स्थितिमें नहीं। अन्तिम स्थितिकी प्राप्ति सुखस्वरूप बतायी जाती है और उन



दोनोंके मध्यकी स्थिति दुःखरूप कही गयी है ॥ ३४ ॥

( सुखं स्वपिति दुर्मेधाः स्वानि कर्माण्यचिन्तयन् ।  
अविज्ञानेन महता कम्बलेनेव संवृतः ॥ )

खोटी बुद्धिवाला मूर्ख मनुष्य अपने कर्मोंके शुभाशुभ परिणामकी कोई परवा न करके सुखसे सोता है; क्योंकि वह कम्बलसे ढके हुए पुरुषकी भाँति महान् अज्ञानसे आवृत रहता है।

ये च बुद्धिसुखं प्राप्ता द्वन्द्वातीता विमत्सराः ।  
तान् नैवार्था न चानर्था व्यथयन्ति कदाचन ॥ ३५ ॥

किंतु जिन्हें ज्ञानजनित सुख प्राप्त है, जो द्वन्द्वोंसे अतीत हैं तथा जिनमें मत्सरताका भी अभाव है, उन्हें अर्थ और अनर्थ कभी पीड़ा नहीं देते हैं ॥ ३५ ॥

अथ ये बुद्धिमप्राप्ता व्यतिक्रान्ताश्च मूढताम् ।  
तेऽतिवेलं प्रहृष्यन्ति सन्तापमुपयान्ति च ॥ ३६ ॥

जो मूढ़ताको तो लाँघ चुके हैं, परंतु जिनको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, वे सुखकी परिस्थिति आनेपर अत्यन्त हर्षसे फूल उठते हैं और दुःखकी परिस्थितिमें अतिशय सन्तापका अनुभव करने लगते हैं ॥ ३६ ॥

नित्यं प्रमुदिता मूढा दिवि देवगणा इव ।  
अवलेपेन महता परिभूत्या विचेतसः ॥ ३७ ॥

मूर्ख मनुष्य स्वर्गमें देवताओंकी भाँति सदा विषयसुखमें मग्न रहते हैं; क्योंकि उनका चित्त विषयासक्तिके कीचड़में लथपथ होकर मोहित हो जाता है ॥ ३७ ॥

सुखं दुःखान्तमालस्यं दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयम् ।  
भूतिस्त्वेवं श्रिया सार्धं दक्षे वसति नालसे ॥ ३८ ॥

आरम्भमें आलस्य सुख-सा जान पड़ता है, परंतु वह अन्तमें

दुःखदायी होता है और कार्यकौशल दुःख-सा लगता है, परंतु वह सुखका उत्पादक है। कार्यकुशल पुरुषमें ही लक्ष्मीसहित ऐश्वर्य निवास करता है, आलसीमें नहीं ॥ ३८ ॥

**सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम्।  
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥ ३९ ॥**

अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सुख या दुःख, प्रिय अथवा अप्रिय, जो-जो प्राप्त हो जाय, उसका हृदयसे स्वागत करे, कभी हिम्मत न हारे ॥ ३९ ॥

**शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।  
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ४० ॥**

शोकके हजारों स्थान हैं और भयके सैकड़ों स्थान हैं; किंतु वे प्रतिदिन मूर्खोंपर ही प्रभाव डालते हैं, विद्वानोंपर नहीं ॥ ४० ॥

**बुद्धिमन्तं कृतप्रज्ञं शुश्रूषुमनसूयकम्।  
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरम् ॥ ४१ ॥**

जो बुद्धिमान्, ऊहापोहमें कुशल एवं शिक्षित बुद्धिवाला, अध्यात्मशास्त्रके श्रवणकी इच्छा रखनेवाला, किसीके दोष न देखनेवाला, मनको वशमें रखनेवाला और जितेन्द्रिय है, उस मनुष्यको शोक कभी छू भी नहीं सकता ॥ ४१ ॥

**एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्तचित्तश्चरेद् बुधः।  
उदयास्तमयज्ञं हि न शोकः स्पृष्टुमर्हति ॥ ४२ ॥**

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह इसी विचारका आश्रय लेकर मनको काम, क्रोध आदि शत्रुओंसे सुरक्षित रखते हुए उत्तम बर्ताव करे। जो उत्पत्ति और विनाशके तत्त्वको जानता है, उसे शोक छू नहीं सकता ॥ ४२ ॥

**यन्निमित्तं भवेच्छोकस्तापो वा दुःखमेव च।  
आयासो वा यतो मूलमेकाङ्गमपि तत् त्यजेत् ॥ ४३ ॥**

जिसके कारण शोक, ताप अथवा दुःख हो या जिसके कारण

अधिक श्रम उठाना पड़े, वह दुःखका मूल कारण अपने शरीरका एक अंग भी हो तो उसे त्याग देना चाहिये ॥ ४३ ॥

किञ्चिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम्।  
तदेव परितापार्थं सर्वं सम्पद्यते तथा ॥ ४४ ॥

मनुष्य जब किसी भी पदार्थमें ममत्व कर लेता है, तब वे ही सब उसके वैसे दुःखके कारण बन जाते हैं ॥ ४४ ॥

यद् यत् यजति कामानां तत् सुखस्याभिपूर्यते।  
कामानुसारी पुरुषः कामाननुविनश्यति ॥ ४५ ॥

वह कामनाओंमेंसे जिस-जिसका परित्याग कर देता है, वही उसके सुखकी पूर्ति करनेवाली हो जाती है। जो पुरुष कामनाओंका अनुसरण करता है, वह उन्हींके पीछे नष्ट हो जाता है ॥ ४५ ॥

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम्।  
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ४६ ॥

संसारमें जो कुछ इस लोकके भोगोंका सुख है और जो स्वर्गका महान् सुख है, वे दोनों तृष्णाक्षयसे होनेवाले सुखकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं ॥ ४६ ॥

पूर्वदेहकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्।  
प्राज्ञं मूढं तथा शूरं भजते यादृशं कृतम् ॥ ४७ ॥

मनुष्य बुद्धिमान् हो, मूर्ख हो अथवा शूरवीर हो, उसने पूर्वजन्ममें जैसा शुभ या अशुभ कर्म किया है, उसका वैसा ही फल उसे भोगना पड़ता है ॥ ४७ ॥

एवमेव किलैतानि प्रियाण्येवाप्रियाणि च।  
जीवेषु परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ ४८ ॥

इस प्रकार जीवोंको प्रिय-अप्रिय और सुख-दुःखकी प्राप्ति बार-बार क्रमसे होती ही रहती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

एतां बुद्धिं समास्थाय सुखमास्ते गुणान्वितः ।

सर्वान् कामान् जुगुप्सेत कामान् कुर्वीत पृष्ठतः ॥ ४९ ॥

ऐसी बुद्धिका आश्रय लेकर कामनाओंके त्यागरूपी गुणसे युक्त हुआ मनुष्य सुखसे रहता है; इसलिये सब प्रकारके भोगोंसे विरक्त होकर उन्हें पीठ-पीछे कर दे अर्थात् उनसे विमुख हो जाय ॥ ४९ ॥

वृत्त एष हृदि प्रौढो मृत्युरेष मनोभवः ।

क्रोधो नाम शरीरस्थो देहिनां प्रोच्यते बुधैः ॥ ५० ॥

हृदयसे उत्पन्न होनेवाला यह काम हृदयमें ही पुष्ट होता है, फिर यही मृत्युका रूप धारण कर लेता है; क्योंकि (जब इसकी सिद्धिमें कोई बाधा आती है, तब) विद्वानोंद्वारा यही प्राणियोंके शरीरके भीतर क्रोधके नामसे पुकारा जाता है ॥ ५० ॥

यदा संहरते कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

तदात्मज्योतिरात्मायमात्मन्येव प्रपश्यति ॥ ५१ ॥

कछुआ जैसे अपने अंगोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार यह जीव जब अपनी सब कामनाओंका संकोच कर देता है, तब यह अपने विशुद्ध अन्तःकरणमें ही स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है ॥ ५१ ॥

न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान् बिभ्यति ।

यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ५२ ॥

जब यह किसीसे भय नहीं मानता और इससे भी किसीको भय नहीं होता तथा जब यह किसी वस्तुको न तो चाहता है और न उससे द्वेष ही करता है, तब परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ॥ ५२ ॥

उभे सत्यानृते त्यक्त्वा शोकानन्दौ भयाभये ।

प्रियाप्रिये परित्यज्य प्रशान्तात्मा भविष्यति ॥ ५३ ॥

जब यह साधक सत्य और असत्य अर्थात् जगत्के व्यक्त और

अव्यक्त पदार्थोंका, शोक और हर्षका, भय और अभयका तथा प्रिय और अप्रिय आदि समस्त द्वन्द्वोंका परित्याग कर देता है, तब उसका चित्त शान्त हो जाता है ॥ ५३ ॥

**यदा न कुरुते धीरः सर्वभूतेषु पापकम्।  
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ५४ ॥**

जब धैर्यसम्पन्न ज्ञानवान् पुरुष किसी भी प्राणीके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा पापपूर्ण बर्ताव नहीं करता, तब परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ॥ ५४ ॥

**या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।  
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ५५ ॥**

खोटी बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये जिसका त्याग करना कठिन है, जो मनुष्यके जीर्ण (वृद्ध) हो जानेपर भी स्वयं कभी जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणोंके साथ जानेवाला रोग बनकर रहती है, उस तृष्णाको जो त्याग देता है, उसीको सुख मिलता है ॥ ५५ ॥

**अत्र पिङ्गलया गीता गाथाः श्रूयन्ति पार्थिव।  
यथा सा कृच्छ्रकालेऽपि लेभे धर्मं सनातनम् ॥ ५६ ॥**

राजन्! इस विषयमें पिंगलाकी गायी हुई गाथाएँ सुनी जाती हैं, जिसके अनुसार चलकर संकटकालमें भी उसने सनातन धर्मको प्राप्त कर लिया था ॥ ५६ ॥

**संकेते पिङ्गला वेश्या कान्तेनासीद् विनाकृता।  
अथ कृच्छ्रगता शान्ता बुद्धिमास्थापयत् तदा ॥ ५७ ॥**

एक बार पिंगला वेश्या बहुत देरतक संकेत-स्थानपर बैठी रही, तब भी उसका प्रियतम उसके पास नहीं आया; इससे वह बड़े कष्टमें पड़ गयी तथापि शान्त रहकर इस प्रकार विचार करने लगी ॥ ५७ ॥

पिङ्गलोवाच

उन्मत्ताहमनुन्मत्तं कान्तमन्ववसं चिरम्।  
अन्तिके रमणं सन्तं नैनमध्यगमं पुरा ॥ ५८ ॥

पिंगला बोली—मेरे सच्चे प्रियतम चिरकालसे मेरे निकट ही रहते हैं। मैं सदासे उनके साथ ही रहती आयी हूँ। वे कभी उन्मत्त नहीं होते; परंतु मैं ऐसी मतवाली हो गयी थी कि आजसे पहले उन्हें पहचान ही न सकी ॥ ५८ ॥

एकस्थूणं नवद्वारमपिधास्याम्यगारकम्।  
का हि कान्तमिहायान्तमयं कान्तेति मंस्यते ॥ ५९ ॥

जिसमें एक ही खम्भा और नौ दरवाजे हैं, उस शरीररूपी घरको आजसे मैं दूसरोंके लिये बन्द कर दूँगी। यहाँ आनेवाले उस सच्चे प्रियतमको जानकर भी कौन नारी किसी हाड़-मांसके पुतलेको अपना प्राणवल्लभ मानेगी ? ॥ ५९ ॥

अकामां कामरूपेण धूर्ता नरकरूपिणः।  
न पुनर्वञ्चयिष्यन्ति प्रतिबुद्धास्मि जागृमि ॥ ६० ॥

अब मैं मोहनिद्रासे जग गयी हूँ और निरन्तर सजग हूँ—कामनाओंका भी त्याग कर चुकी हूँ। अतः वे नरकरूपी धूर्त मनुष्य कामका रूप धारण करके अब मुझे धोखा नहीं दे सकेंगे ॥ ६० ॥

अनर्थो हि भवेदर्थो दैवात् पूर्वकृतेन वा।  
सम्बुद्धाहं निराकारा नाहमद्याजितेन्द्रिया ॥ ६१ ॥

भाग्यसे अथवा पूर्वकृत शुभ कर्मोंके प्रभावसे कभी-कभी अनर्थ भी अर्थरूप हो जाता है, जिससे आज निराश होकर मैं उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी हूँ। अब मैं अजितेन्द्रिय नहीं रही हूँ ॥ ६१ ॥

सुखं निराशः स्वपिति नैराश्यं परमं सुखम्।  
आशामनाशां कृत्वा हि सुखं स्वपिति पिङ्गला ॥ ६२ ॥

वास्तवमें जिसे किसी प्रकारकी आशा नहीं है, वही सुखसे सोता है। आशाका न होना ही परम सुख है। देखो, आशाको निराशाके रूपमें परिणत करके पिंगला सुखकी नींद सोने लगी ॥ ६२ ॥

भीष्म उवाच

एतैश्चान्यैश्च विप्रस्य हेतुमद्भिः प्रभाषितैः।  
पर्यवस्थापितो राजा सेनजिन्मुमुदे सुखी ॥ ६३ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! ब्राह्मणके कहे हुए इन पूर्वोक्त तथा अन्य युक्तियुक्त वचनोंसे राजा सेनजित्का चित्त स्थिर हो गया। वे शोक छोड़कर सुखी हो गये और प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पिङ्गलागीता सम्पूर्णा ॥

